बातचीत

❑ कर्मेन्दु शिशिर

हिन्दी क्षेत्र में बाल साहित्य की स्थिति बेहद शोचनीय है, यह बहस का विषय नहीं है। बहस का विषय यह है कि इस बदहाली के कारण क्या हैं ?

जब तक हम हिन्दी क्षेत्र की बदहाली को समग्रता से नहीं लेंगे, तब तक इस एक पक्ष के कारक तत्वों की पहचान मुश्किल है। बहुत सारे दूसरे भाषा-भाषी क्षेत्रों की भी स्थिति शोचनीय है। हिन्दी क्षेत्रों में भी सांस्कृतिक, शैक्षणिक और सामाजिक स्थितयों में असमानता है। निरक्षरता का प्रतिशत भी इन्हीं क्षेत्रों से बढ़ता है। ऐसे में इन कारणों की पड़ताल का विस्तृत भूगोल है। इसलिए सरलीकरण करके हम इसका निदान नहीं ढूंढ़ सकते।

कुछ मित्रों का मानना है कि हिन्दी भाषा में बाल साहित्य की कोई समृद्ध परंपरा नहीं है। आखिर हमारी पंरपरा है क्या ? क्या पंचतंत्र, जिसमें हर कहानी का अंत किसी शिक्षा में होता था। हिन्दी क्षेत्र में बाल साहित्य की विरासत के नाम पर एक समस्याग्रस्त धरोहर है।

यह विशुद्ध अज्ञानता है कि हिन्दी में बाल साहित्य की समृद्ध परंपरा नहीं है अथवा आधुनिकता का उदण्ड असर जिसमें अपनी अवमानना करना, हमें प्रगतिशील बनाता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, प्रेमचंद, सोहनलाल द्विवेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी, शिवपूजन सहाय सहित लेखकों की बहुत ही समृद्ध परंपरा है, जिसने बाल साहित्य को अप्रतिम समृद्धि दी। स्वाधीनता आंदोलन में ऐसी स्वतंत्र पत्रिकाओं की बात छोड़िए, पुस्तक प्रकाशनों की कई श्रृंखलाएं थीं।

जहां तक विरासत के स्वरूप की बात है तो इस पर विचार होना चाहिए। बाल साहित्य अपने समय और समाज से अविच्छिन्न नहीं होता । जब देश में स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था, हर क्षेत्र में नई जागरूकता की कोशिश हो रही थी, तो बाल साहित्य भी उससे अछूता नहीं था। ठीक उसी तरह आज का बाल साहित्य भी अपने समय का ही प्रक्षेपण है। एक पूंजीवादी समाज में बाजार अपने चरम उत्कर्ष पर होता है। उस बाजार के प्रति आकर्षण पैदा करने की नित नई उद्भावनाएं तलाश की जाती हैं और उनका अत्यन्त दक्ष इस्तेमाल भी। आप पाएंगे, इस इस्तेमाल में स्त्रियां और बच्चे सबसे सॉफ्ट टारगेट चुने जाते हैं। यह अकारण नहीं कि विज्ञापनों में इन दो वर्गों की खास मौजूदगी होती है। ऐसे में बच्चों की मानसिकता को अपने अनुकूल गढ़ने की कोशिश होगी ही। हमें यह बात भी नहीं भूलनी चाहिए कि बच्चे भी वर्गीय समाज से ही आते हैं और उनकी रुचियां, मानसिकता अपने वर्ग से गहरे प्रभावित होती हैं। ऐसे में बाल साहित्य पर विचार करते हुए आपके दृष्टिकोण की निर्णायक भूमिका होगी। नवजागरण का संपूर्ण बाल साहित्य नैतिक आदर्शों की एकांगिकता और उपदेशात्मक प्रवृत्ति का ही था - यह किसने कहा ? उसकी खूबियों के विस्तार की बात जाने दी जाए सिर्फ भाषा संस्कार की दृष्टि से देखें तो उस स्तर का साहित्य

मुझे आज तो देखने में नहीं मिलता। आज बाल साहित्य लिखते समय लोग क्या इस बात पर गंभीरता से विचार करते हैं कि हमें कैसी भाषा, कैसी गद्य शैली का इस्तेमाल करना चाहिए ? उस स्तर पर कैसे और कितने शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का इस्तेमाल करना चाहिए ? सोच, संवेदन और संस्कारों को निर्मित करने वाली भाषा बच्चे के व्यक्तित्व को बदल देती है, उसे नया आकार देती है। शायद लोगों को पता न हो, प्रेमचंद की 'पंच परमेश्वर' कहानी भी बाल साहित्य ही थी। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के आग्रह पर कृपानाथ मिश्र का बच्चों के लिए लिखा यात्रा संस्मरण बच्चों का यूरोप' पढ़ा जाना चाहिए। मूल बात यह कि नवजागरण काल में बाल साहित्य अपने समय-समाज के अनुरूप नवजागरण के उद्देश्यों के अनुरूप था। वह अच्छा था, बुरा था, उसकी सीमाएं थीं अथवा वह महत्त्वपूर्ण नहीं था। ठीक है, तो नवजागरण को गुजरे साठ से ज्यादा साल हुए और हम अभी भी बाल साहित्य के प्रतिमान पर ही बहस विचार, कर रहे हैं। अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए हमने पहला काम यह किया कि यह निष्कर्ष निकाला कि *''हिन्दी क्षेत्र में बाल साहित्य की विरासत के नाम पर एक समस्याग्रस्त धरोहर है।''* जाहिर है, हमको धैर्य से विमर्शों के अगले निष्कर्षों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। पहले निष्कर्ष तय कर लीजिए, फिर प्रतिभाशाली लोग उसके अनुरूप बाल साहित्य भी रच डालेंगे। ऐसे में समस्या ही क्या है ? विमर्श कीजिए और बाल साहित्य लिखवाइए।

अच्छे बाल साहित्य के मानक क्या हैं ?

पहली बात यह कि बाल साहित्य एक प्रयोजन मूलक लेखन है। इसलिए 'प्रयोजन के अनुरूप ही मानक तय होंगे। हम जो मानक तय करेंगे, वह पूरे समाज और देश के बच्चों के लिए सुलभ साहित्य पर लागू नहीं हो सकता। इस देश के अति भद्रजनों के समाज में, जिस बाल साहित्य को पढ़ा जाएगा और साधनहीन, वंचित और निरक्षर समाज में जिस बाल साहित्य को पढ़ा जाएगा - दोनों के मानक एक नहीं होंगे ? हम वर्गीय सीमाओं का अतिक्रमण जरूर करें, कोई रोक नहीं। आखिर हम विमर्श में और करेंगे क्या ? मानक ही तो तय करेंगे।

विश्व के एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बाल साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन !

मुझे इस सोच से तनिक आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि नवजागरण को जो अंग्रेजीदां सोच नकारती है, उसका दूसरा चरण विश्व से तुलना का होता है। आपके इस सोच में 'हिन्दी क्षेत्र' से बात आगे बढ़कर 'भारतीय भाषाओं' तक जा पहुंची है। क्या 'काबुलीवाला' अविस्मरणीय चरित्र नहीं है ? रवीन्द्रनाथ टैगोर का बाल साहित्य विश्व स्तरीय नहीं मानते क्या ? हमारे यहां हनुमान, भीम, शूर्पणखा, नारद-अविस्मरणीय चरित्र नहीं हैं - क्या ? हर भाषा का एक समाज होता है और उस समाज की एक ऐतिहासिक परंपरा होती है। आप दूसरे से सीखकर अपनी परंपरा को समृद्ध कर सकते हैं, किया भी जाता है, मगर बेवजह, बौद्धिक दंभ प्रदर्शन में, बिना किसी प्रयोजन के विश्व साहित्य से तुलना मेरी समझ में नहीं आया। वैसे विमर्श करने वाले बौद्धिक भद्रजन तो यह सब करते ही हैं। वे रचने और सृजने सिरजने के अलावा, यही सब तो करते हैं।

महान रूसी कथाकार चंगीज आइत्मातोव का एक महान उपन्यास है - 'कसांद्रा दाग' ! इसमें अजन्मे तमाम बच्चे अपनी मांओं के गर्भ से बाहर आने को इंकार कर देते हैं। वे कहते हैं कि पृथ्वी और उसका समाज इतना बदरंग, निर्मम और फूहड़ है कि वे इसे जीने योग्य नहीं मानते। वे ऐसी दुनिया में आने से विद्रोह कर देते हैं। ऐसी मांओं के सिर पर एक खास तरह के 'कसांद्रा दाग' से वे अपनी बात हम तक लाते हैं।

अब इस समाज को अजन्मे बच्चों के योग्य बनाने के पहले दो बातें स्पष्ट कर लेनी होंगी। पहली बात यह कि यह समाज इस हालात तक कैसे पहुंचा ? कौन-कौन कारक तत्व इसके जिम्मेदार रहे। आज वे कारक तत्व कौन हैं, उनकी पहचान जरूरी है। दूसरी बात है - प्रतिकार की। मोटे तौर पर बाल साहित्य को लेकर मूल बात प्रयोजन की है। फिर विचार, सक्रियता, सरोकार, ईमानदार संलग्नता और रचने की क्षमता जरूरी है। आप अन्यथा नहीं लें, तो मैं यह कहना चाहूंगा कि विमर्शों की प्रासंगिकता और श्रेष्ठता की निरंतरता सार्थक सक्रियता पर ही निर्भर होती है। इसलिए परिवर्तन कामी चेतना से ही बाल साहित्य रचा जाना चाहिए। ◆